८

मार्टिन हैडेगर

समकालीन अस्तित्ववादी दर्शन में प्राचीन अस्तित्ववादी विचारों की समस्यायें नए रूप-रूप में प्रस्तुत की जा रही हैं। इसमें जिन पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हो रहा है वे अधिकांश रूप में जर्मन दार्शनिक मार्टिन हैडेगर (Martin Heidegger) से प्राप्त हुए हैं। यद्यपि हैडेगर स्वयं अस्तित्ववादी शिविर में रहना स्वीकार नहीं करता है किन्तु उसके 'सत्' के दर्शन में अस्तित्व की समस्या इतनी अधिक छाई हुई है कि आलोचक उसे अस्तित्ववाद की परिधि से बाहर नहीं निकलने देते हैं। हैडेगर के जिन शब्दों का अब बहुत प्रयोग हो रहा है वे हैं: आकस्मिक; असुरक्षा; विभ्रम; मानव अस्तित्व का त्याग, इसका अन्तिम अर्थ, इसकी क्षणिकता, ऐतिहासिकता और प्रामाणिकता; इसकी चिन्ता, इसका भय; शून्य का डर, इसका मृत्यु-का-ओर-अस्तित्व, मृत्यु-की-ओर-स्वतन्त्रता, सत् और अस्तित्व का सम्बन्ध, सत् और सत्य, सत् और शून्य, सत् और अतिक्रमण आदि आदि। इन अवधारणाओं का रूप दार्शनिकों ने अपने अनुसार निर्मित किया है किन्तु प्रश्न और समस्यायें सबकी एक ही हैं।

हुसरेल के अस्तित्ववादी चिन्तन पर विचार करते हुए हम पहले कह आये हैं कि उसकी दृश्यजगतशास्त्रीय विधि का प्रयोग प्रायः सभी अस्तित्वादियों ने किया है। उसका प्रभाव हैडेगर पर सबसे अधिक पड़ा है। हुसरेल का विचार था कांट के आत्मवाद से स्वयं वस्तुओं की ओर मुड़ा जाय और तत्वों (essence) की जीवनहीन जड़ता की बजाय बुद्धितत्वों का महत्व उद्घाटित किया जाय, किन्तु हुसरेल ने आगे चलकर इस विचार को त्याग दिया। यही विचार कुछ काल बाद हैडेगर के चिन्तन में पुनः उत्पन्न हुए। उसने हुसरेल की भाँति स्वीकार किया

किया कि दर्शन का प्रारम्भिक कार्य दृश्यजगत का अध्ययन करना है। यह बात अवश्य है कि आगे चलकर दर्शन को तत्व-मीमांसा पर अवश्य विचार करना चाहिए। यह दृश्यजगतशास्त्रीय विधि अपने अस्तित्ववादी दर्शन में अपनाता है और उसे तत्व-मीमांसा के आधार तक ले जाता है। इसलिए हैडेगर के दर्शन का मुख्य प्रश्न 'अस्तित्व' नहीं अपितु 'परमसत्' क्या है और वह क्यों है? लाइब्नीज के शब्दों में "न कुछ की बजाय कुछ क्यों है?" यही प्रश्न हैडेगर की दृष्टि में आधार प्रश्न है। इसे वह बहुत अधिक महत्व देता है।

मार्टिन हैडेगर का जन्म सन् १८८९ में जर्मनी के एक छोटे से गांव मेस्किर्च (Messkirch) में हुआ था। उसका परिवार रोमन कैथोलिक था। उसने डन्स एकीनास की रचनाओं का अच्छा अध्ययन किया था। पहले उसकी शिक्षा विल्हेम विण्डिलबेण्ड और हेनरिच रिकेर्ट के नव-कांटवादी स्कूल में प्रारम्भ हुई थी। बाद में वह हुसरेल के सम्पर्क में आया। इन दार्शनिकों में दो विशेषतायें थीं। एक तो वे वस्तु और अवधारणा में अन्तर मानते थे। यह अन्तर ज्ञान-मीमांसा की दृष्टि से किया गया था। दूसरे सारे ऐतिहासिक अध्ययनों में वैयक्तिकता समाहित रहने का तथ्य उन्हें दिखाई देता था। इन विशेषताओं का प्रभाव हैडेगर पर पड़ना स्वाभाविक था।

हैडेगर की पहली प्रकाशित पुस्तक डंस स्कोटस पर उसका शोध प्रबन्ध था। विण्डिलबेण्ड ने इसकी प्रशंसा की थी। इसमें डंस स्कोटस के दर्शन का गहन और व्यापक मूल्यांकन किया गया था। इस प्रकार हैडेगर ने दर्शन का अध्ययन यूरोप के एक प्राचीन दार्शनिक से प्रारम्भ किया। इसके बाद फ्रीबर्ग विश्वविद्यालय में १९१५ के ग्रीष्मकालीन सेमेस्टर में पहला भाषण दिया। इसमें उसने 'ऐतिहासिक अध्ययन में काल की अवधारणा' पर प्रकाश डाला था। इसी दिशा में उसने अधिक गंभीर चिन्तन के परिणामस्वरूप 'परमसत् और काल' (Being and Time) ग्रन्थ की रचना की।

शिक्षा समाप्त करने के बाद हैडेगर ने मारबर्ग विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य किया और १९२९ में हुसरेल के हटने के बाद उसने फ्रीबर्ग विश्वविद्यालय में उसका स्थान ग्रहण कर लिया। हुसरेल के सम्पर्क में रहने से उसे दृश्यजगत-शास्त्रीय विधि समझने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। उसने इसी विधि को ध्यान में रखते हुए दर्शन के इतिहास का अध्ययन किया। उसका विचार था कि दार्शनिक परम्परा का और दार्शनिक समस्याओं का अध्ययन एक ही बात

काप्रोपेरि है किन्तु वह है सर्वत्र। यदि विशेष रूप से त्रास का कारण ढूंढ़ा ही जाय और मनुष्य को संसार से ही त्रास मिलता है और वह अपने 'संसार-में-परमसत्' से भी त्रस्त है।

भय में तीन बातें विचारणीय हैं— (अ) भय की वस्तु, (ब) उस वस्तु से खतरा और (स) डासेन की भय-भीत स्थिति। भय की वस्तु प्रकृति-प्रदत्त, मनुष्य-निर्मित या कोई अन्य मनुष्य हो सकता है। इनमें किसी से हानि होने की सम्भावना होती है। जिस वस्तु से हानि होने का डर होता है और जिस प्रकार की हानि हो सकती है स्पष्ट ज्ञात रहता है। यह भी सम्भव रहता है कि उस वस्तु से हानि हो या न भी हो। अतः स्पष्ट है कि भय प्रदान करने वाली वस्तु उसके खतरे से जानी जा सकती है। खतरा आने से पहले ही उसे हम जान लेते हैं। भय प्राप्त होने पर डासेन को अपने खतरे की स्थिति ज्ञात होती है। त्रास भी भय के समान होता है किन्तु उसका स्वरूप भिन्न है। जिस वस्तु से त्रास होता है उससे भी खतरा ही दिखाई देता है, लेकिन त्रास देने वाली वस्तु संसार में कहीं मिलती नहीं है। वह वस्तु न प्रकृति-निर्मित होती है न मनुष्य-निर्मित और न किसी अन्य व्यक्ति का डासेन हो। अब डासेन पूर्णतः अपनी चिन्ता के संसार (world of care) में व्यस्त होता है और अपने को 'अनेक के समान एक' प्रचारित कर रहा होता है तो डासेन में अपना-परमसत् (self-Being) सहसा प्रकट हो जाता है। त्रास की वस्तु भय की वस्तु के समान निश्चित नहीं होती है।[1] वह किसी प्रकार से है अवश्य; किन्तु किसी विशेष स्थान में कोई विशेष वस्तु नहीं। जिस वस्तु से त्रास होता है वह यही प्रतीत होती है कि 'वह कुछ नहीं है और कहीं नहीं है।' अतः न-कुछ ही ऐसा कुछ है जिससे त्रास लगता है। 'संसार-में-परमसत्' को यह त्रास त्रस्त करता है। त्रास संसार को संसार रूप में प्रकट करता है। इसका यह अर्थ नहीं कि संसार की सांसारिकता त्रास में ही प्रकट होती है।

अब प्रश्न यह है कि डासेन त्रास की स्थिति में किस हेतु है। हेडेगर का कथन है कि त्रास उत्पन्न होने पर डासेन अपनी निहित शक्ति (Potentiality) जान लेता है। यह शक्ति परमसत् है। अतः त्रास में मनुष्य परमसत् को जान सकता है। इसमें परमसत् या निहितशक्ति का कोई एक ही पक्ष उद्घाटित नहीं होता है बल्कि उसका सामान्य रूप से समग्र ज्ञान होने लगता है। त्रास में संसार या अन्य व्यक्तियों से कुछ भी प्राप्त

1. "What is dreaded is that what is threatening Is nowhere. It is somehow there – and yet no-where, very close and oppressing — and yet no-where." Werner Brock, Existence and Being, p. 87

नहीं हो सकता है। त्रास मनुष्य को संसार से हटाकर अपने भीतर एकान्त में पहुंचा देता है। वहां निहित-शक्ति उसके सामने सहसा चमक उठती है।

यहां एक बात यह ध्यान देने की है कि त्रास में जिस वस्तु से त्रास होता है और जिसके हेतु त्रास होता है दोनों एक ही हैं। एक तो 'संसार-में-परमसत्' फेंकी-पड़ी (thrownness) स्थिति में है और दूसरा प्रामाणिक रूप में 'संसार-में-परमसत्' की निहित-शक्ति है। हेडेगर के विचार से परमसत् प्राप्त करने के लिए त्रास पहली मंजिल है। न-कुछ से त्रास उत्पन्न होता है और परमसत् का द्वार खुल जाता है। न-कुछ परमसत् का आवरण कहा जा सकता है। अन्यत्र आगे चलकर इसकी व्याख्या की जायगी।

डासेन के परमसत् की व्याख्या 'चिन्ता' (Care) के रूप में की गई है। त्रास की भांति चिन्ता का अर्थ भी तत्वशास्त्रीय अर्थ में समझना चाहिए। इसके विषय में तीन बातें विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं। एक तो डासेन ऐसा सत् है जो अपने परमसत् में अपने परमसत् से ही सम्बन्ध रखता है। यह भी कहा जा सकता है कि वह अपने परमसत् के हेतु ही है। डासेन अपने परमसत् में अपने आपके पूर्व ही सदा विद्यमान रहता है।[1] दूसरे, इस अपने आपके पूर्व विद्यमान परमसत् को संसार से अलग अकेला न समझना चाहिए। यह तो 'संसार-में-परमसत्' का ही एक पक्ष है। संसार में वह अपना उत्तरदायित्व समझता है। तीसरे, डासेन का अस्तित्व केवल संसार में विद्यमान हो, इतनी ही बात नहीं है। डासेन का जिस संसार से सम्बन्ध है उसमें वह व्यस्त रहता है और अपना समय लगाता है। उसकी रुचि की वस्तुयें मनुष्य-निर्मित होती हैं। इसलिए उसका कार्यक्षेत्र सभ्यता का संसार होता है।

संक्षेप में, डासेन संसार में आया हुआ परमसत् है, यहां आने के पूर्व भी उसके विद्यमान रहने का गुण है और संसार में उसका सम्बन्ध अन्य सतों से भी है। डासेन की संरचना का यह पूरा तत्वशास्त्रीय रूप है। इसी को चिन्ता (Care) नाम भी दिया गया है। चिन्ता परमसत् का ही एक नाम है। जब 'चिन्ता' शब्द का प्रयोग किया जाता है तो इसका कार्य पाठक के मन में दार्शनिक या कवि के विचार या उसका परमसत् उद्बुद्ध करना होता है। दार्शनिक के विचार परमसत् की वाणी के अनुकूल होते हैं। उन्हें वह अपनी पूरी सावधानी (care) से भाषा के द्वारा व्यक्त करना चाहता है। अतः अंग्रेजी का केयर (care) या जर्मन का

1. Dasein is, in its Being, always already in advance of itself." Werner Brock, Existence and Being p. 50.

सोर्ज (sorge) शब्द चिन्ता, सावधानी और ध्यान देने का भाव लिये है। इसका सम्बन्ध व्यक्ति के अपने गहनतम प्रामाणिक विचारों से है जिसमें परमसत् का प्रकाश रहता है।

हैडेगर ने मानव डासेन में सर्व-व्यापी 'चिंता' (care) को स्पष्ट करने के लिए एक प्राचीन रूपक का सहारा लिया है। एक दिन चिन्ता ने नदी पार करते समय तट पर चिकनी मिट्टी देखी। उसने थोड़ी सी मिट्टी ले ली और उसे हाथ से गोल बनाकर चिकनाने लगी। वह सोच ही रही थी कि इस प्रकार मिट्टी से क्या बन गया है — तभी वहाँ जूपीटर आ पहुँचा। चिन्ता ने उससे कहा कि वह उस मिट्टी के टुकड़ों को जीवन प्रदान कर दे। जूपीटर ने तुरन्त उसमें एक आत्मा डाल दी और वह जीवित हो उठा। मिट्टी का ढाँचा एक प्राणी तो बन गया किन्तु चिन्ता और जूपीटर में विवाद खड़ा हो गया। दोनों उसे अपना नाम देना चाहते थे। अपनी बात के समर्थन में दोनों तर्क-वितर्क कर ही रहे थे कि पृथ्वी वहाँ आ उपस्थित हुई और उसने कहा कि वह उस प्राणी का अपना नाम प्रदान करेगी। उसका कहना भी उचित था क्योंकि उसी ने उस प्राणी को शरीर प्रदान दिया था। तीनों ने अपने विवाद को हल करने के लिए शनि को आमन्त्रित किया। शनि ने आते ही कहा कि जूपीटर, तुमने इस प्राणी को आत्मा प्रदान की है, इसलिए इसकी मृत्यु के बाद तुम इसे प्राप्त करने के अधिकारी हो। पृथ्वी, तुमने इसे शरीर प्रदान किया है, इसलिए इसकी मृत्यु के बाद तुम्हें इसका शरीर मिलेगा। चिन्ता ने इसे यह रूप दिया है। इसलिए जब तक यह प्राणी इस रूप में रहेगा वह चिन्ता के ही अधिकार में होगा। जहाँ तक इस प्राणी के नामकरण का प्रश्न है इसे मनुष्य (homo) कहा जायगा क्योंकि पृथ्वी (humo) से बना है। इस रूपक का स्पष्ट आशय है कि मनुष्य सारे जीवन चिन्ता के अधिकार में रहता है। वह स्वभावतः अपने बारे में तथा अपने सम्पर्क में आने वाले संसार के प्रति चिन्तित रहता है। वह अपनी विधि से अपने उत्तरदायित्व को समझते हुए कार्य करता है। यहाँ चिन्ता का तात्पर्य व्यग्रता (anxiety) नहीं है।

काल (Time)

यदि डासेन का अधिक गहन तत्त्वशास्त्रीय विवेचन किया जाय तो उसके नये क्षितिज (horizon) प्रकट हो जाते हैं जिसमें परमसत् दृष्टिगत होने लगता है और उसका अर्थ समझ में आने लगता है। परमसत् के साथ काल (Time) का प्रश्न अपरिहार्य रूप से निबद्ध है। काल के भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों आयाम विचारणीय हैं। इस दिशा में आगे बढ़ने के लिए दो प्रश्न सहायक होते

है—(१) एक तो डासेन को समग्र रूप में किस प्रकार ... उसका विश्लेषण किया जा सकता है ? तथा (२) डासेन ...ने वाले अनुभव से सर्वथा ...माणिक अस्तित्व को हो सकता है ? दोनों प्रश्न एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। बाहर निकालकर

इन प्रश्नों को ध्यान में रखते हुए डासेन की काल सापेक्षता ... भी ज्ञात हो करने के लिए हैडेगर मृत्यु, आत्म-चेतना (Conscience), अपराध... ऊपर (guilt) और संकल्प (resolve) पर विचार करता है। पहले प्रश्न का ... उत्तर जानने के लिए अर्थात् डासेन को समग्र रूप से समझने के लिए मृत्यु का विषय विचारणीय है। मृत्यु-की ओर-परमसत् (Being-towards-one's-own-death) निरन्तर बढ़ रहा है। यह तथ्य सब से अधिक महत्व का है। मृत्यु डासेन का अन्त है। मृत्यु तक पहुँच कर डासेन पूर्ण हो जाता है। डासेन की सीमा पर पहुँचने पर यह भी ज्ञात होता है कि वहाँ वह समाप्त हो जाता है। उसकी हानि होती है। यह बात अन्य डासेन का जीवन-इतिहास देखकर जानी जाती है। लेकिन जब प्रश्न अपने डासेन की मृत्यु का होता है तो अनुभूति भिन्न प्रकार की होती है। मृत्यु ऐसी बला है कि इसका हस्तान्तरण नहीं हो सकता है। सामाजिक कार्यों में कोई व्यक्ति दूसरे के स्थान की पूर्ति कितनी ही अच्छी तरह कर ले किन्तु स्वयं मर कर दूसरे को सदा के लिए मृत्यु से छुटकारा नहीं दिला सकता है। डासेन जब तक जीवित है सदा वह नहीं रहता है जो आगे होने वाला है। दूसरे लोग जो मर गये हैं अब संसार में नहीं है। यह न होने की विशेषता डासेन की मृत्यु के बाद भी बनी रहती है।

डासेन के अन्त का क्या तात्पर्य है ? इसका अर्थ न पूर्ति (fulfilment) है, न वर्षा की तरह रुक जाना (ceasing) है, न काम की तरह पूरा हो जाना है और न लुप्त हो जाना ही है। यह अन्त धागे के एक सिरे की तरह भी अन्त नहीं होता है। इस अन्त का तात्पर्य यह है कि परमसत् अन्त की ओर निरन्तर बढ़ रहा है। मृत्यु डासेन के परमसत् का एक लक्षण है। परमसत् के इस रूप को डासेन अपने में अभिव्यक्त करता है। मृत्यु लक्षण वाला परमसत्-'चिन्ता' (care) कहा जाता है। मृत्यु परमसत् का एक अपरिहार्य लक्षण होने के कारण ही डासेन मृत्यु से बच नहीं सकता है। मृत्यु गहनतम और निरपेक्ष है। मृत्यु आने पर डासेन का सम्बन्ध अन्य वस्तुओं और व्यक्तियों से समाप्त हो जाता है।

मृत्यु कोई ऐसा लक्षण नहीं है जिसे डासेन किसी विशेष समय में स्वीकार कर लेता हो। डासेन के अस्तित्व का ही अर्थ है कि उसमें मृत्यु की विशेषता अन्तर्निहित है। पहले तो व्यक्ति को मृत्यु का ज्ञान नहीं होता है; यदि होता भी